सिर उठाकर चलने में शर्म लगती है

'मीडिया मीमांसा' का वर्तमान अंक विश्व के अनेक प्रतिष्ठित समाचार पत्रों के भविष्य पर उठाई जा रही आशंकाओं पर केन्द्रित है। विश्वविद्यालय ने इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर गत चार और पाँच दिसम्बर को भोपाल में एक राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन किया था। भारतीय प्रेस परिषद के विद्वान अध्यक्ष न्यायमूर्ति जी.एन. रे सहित लगभग एक दर्जन मीडिया विशेषज्ञ इस गंभीर विमर्श में सम्मिलत हुए थे। इसका सार-संक्षेप आगे के पृष्ठों में उपलब्ध है। उन्हीं दिनों हैदराबाद में 'विश्व समाचार पत्र कांग्रेस' का बासठवाँ और 'विश्व संपादक फोरम' का सोलहवाँ सम्मेलन भी आयोजित हुआ था। दोनों विमर्शों में इस बात पर सहमति थी कि अमेरिका जैसे समृद्ध देशों के समाचार पत्रों-पत्रिकाओं के सामने अस्तित्व का जो खतरा है, वैसा खतरा भारत जैसे विकासशील देशों के सामने फिलहाल नहीं है। लेकिन यह निर्विवाद है कि इंटरनेट पत्रकारिता ही, जो पूरी दुनिया के युवाओं में तेजी से लोकप्रिय हो रही है, मीडिया का भविष्य है। भारत में न्यूज वेबसाइट और इन्टरनेट पत्रकारिता को शुरू हुए डेढ़ दशक भी नहीं हुए हैं, लेकिन विचारों की विविधता और समाचारों की रोचकता ने उसमें प्रयोग की क्षमता और लोकप्रियता बढ़ाई है। वेब पत्रकारिता के उत्साही उद्यमियों को अब धीरे-धीरे विज्ञापन भी मिलने लगे हैं।

भारतीय मीडिया ने स्वतंत्रता के बाद बड़ी दूरियाँ तय की हैं यह निर्विवाद है। सामाजिक दायित्वों के निर्वाह के लिए उनके संघर्षों तथा सम्पन्नता की दौड़ में उनके प्रयासों का समग्रता से आकलन जरूरी है। मीडिया के सामने गंभीर खतरा उसके अस्तित्व को लेकर कम लेकिन उसकी भूमिका और विश्वसनीयता को लेकर अधिक है। पिछले एक दशक में कई समाचार पत्र समूहों और चैनलों ने अकूत धन कमाने के लोभ में मीडिया की सभी मान्य परम्पराओं और नैतिक मानदण्डों को दरकिनार कर दिया है। पिछले अंक में हमने लोकसभा के लिए हुए चुनावों में मीडिया के आचरण की पड़ताल की थी। राजनीतिक दलों और अमीर राजनेताओं के पक्ष में लिखने और छापने के लिए फिरौती की तरह 'पैकेज' वसूले गए थे। प्रेस परिषद के अध्यक्ष सहित अनेक वरिष्ठ पत्रकारों और बुद्धिजीवियों के विचारों को भी हमने रेखांकित किया था। यह उम्मीद की गई थी कि पूरी मीडिया की बदनामी का कारण बनने वाला यह वर्ग आत्ममंथन और आत्मनियमन का प्रयास करेगा। लेकिन हुआ उल्टा। महाराष्ट्र, हरियाणा और अन्य विधानसभाओं के चुनाव में 'पेडन्यूज' छापने का यह धंधा निर्लजता की सीमाएं पार करने लगा है। प्रसिद्ध पत्रकार पी. साईनाथ ने महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री और प्रमुख समाचार पत्रों के बीच हुए अनैतिक गठबंधन को साहसिक ढंग से उजागर किया है। 'द हिन्दू' के बाद 'इण्डियन एक्सप्रेस', 'आउटलुक' और कई अन्य पत्र-पत्रिकाओं ने भी इस प्रवृत्ति पर चिन्ता व्यक्त की है।

प्रेस परिषद ने अपने अघोषित बहिष्कार और उपेक्षा के बावजूद मीडिया और प्रमुख रूप से समाचार पत्रों के इस वर्ग को चिन्हित करने के उस अभियान को जारी रखा है जिसकी शुरुआत स्वर्गीय प्रभाष जोशी ने की थी। सम्पादकों की सम्मानित एवं सक्रिय संस्था 'एडीटर्स गिल्ड आफ इंडिया' ने भी विज्ञापनों को समाचार बनाकर छापने की नई विकृति के विरुद्ध आन्दोलन चलाने का सराहनीय निर्णय किया है। 'गिल्ड' के सदस्य संपादकों ने गहरी चिन्ता के साथ मीडिया के ऐसे समूहों को चेतावनी भी दी है जिन्होंने अब चुनावी या राजनीतिक समाचारों की तरह निजी कम्पनियों के विज्ञापनों को भी 'पेडन्यूज' के रूप में परोसना शुरू कर दिया है। 'गिल्ड' के अध्यक्ष और टेलीविजन के जाने माने पत्रकार राजदीप सरदेसाई ने भी अपने लेख में जवाबदेही के सिद्धान्त के इस ज्वलंत प्रश्न को उठाया है कि 'अगर हम अपने पेशे में उठ रहे तूफान के प्रति आँखें मूँदे रहते हैं तो हमें लोकतंत्र के दूसरे स्तंभों के खिलाफ कार्रवाई की माँग करने का क्या नैतिक अधिकार है?'

दुनिया के किसी देश की राजनीति और मीडिया दोषमुक्त नहीं है लेकिन भारतीय मीडिया में बढ़ते लोभ और आम नागरिक के हितों की उपेक्षा का असर अब पूरे लोकतंत्र पर पड़ने लगा है। जिस भारतीय मीडिया का इतिहास स्वतंत्रता, शिक्षा, सुरक्षा, संपन्नता और रोजगार की गारंटी के लिए संघर्ष करना रहा है उसकी छवि आज अपने औद्योगिक साम्राज्य के लिए जोड़-तोड़ करने वाली संस्था के रूप में क्यों बनती जा रही है? यह परिवर्तन रातोंरात नहीं हुआ है। पिछले दो दशकों में राजनीति, उद्योग और मीडिया के प्रभावशाली वर्गों के बीच सुनियोजित साँठगाँठ का यह परिणाम है कि आज विज्ञापनदाता ही मीडिया के माईबाप बन गए हैं। पाठकों और दर्शकों को उपभोक्ता बनाकर कम्पनियों के सामने परोसा जाने लगा है। संपादकों में अपनी स्वायत्तता और नैतिकता बेचकर सम्पन्नता बटोरने की प्रवृत्ति क्यों बढ़ती जा रही है। एक ओर जहाँ मीडिया के लक्ष्यभ्रष्ट और शक्तिक्षीण होने के कारण संवैधानिक संस्थाएं कमजोर और पतित हुई हैं, वहीं दूसरी ओर अपराधियों, भ्रष्टाचारियों और दबंगों को नई ताकत मिली है। पैंतीस वर्ष पूर्व जब एक लोकतांत्रिक तानाशाही ने मीडिया की स्वतंत्रता और नागरिक अधिकारों का अपहरण किया था तो अधिकतर मीडिया मालिकों, सम्पादकों और बुद्धिजीवियों ने आत्मसमर्पण कर दिया था। आज जब मीडिया के स्वामित्व का चरित्र बदलने लगा है, अवैध कमाई और विदेशी पूँजी के सहारे मीडिया को नियंत्रित करने की कोशिश हो रही हो तो बाजार नियंत्रित मीडिया को लोकहित केन्द्रित मीडिया में परिवर्तित कैसे किया जा सकता है? देश के प्रबुद्ध नागरिकों के बीच एक स्वाभिमानी मीडियाकर्मी सिर उठाकर चलने में शर्म क्यों महसूस करने लगा है? क्या युवा पत्रकारों की पूरी पीढ़ी विचारों, समाचारों और तथ्यों से सौदेबाजी करने वाली भोगवादी मीडिया द्वारा निर्धारित की गई शर्तों पर ही रोजगार पाने के लिए अभिशप्त है?

इन प्रश्नों पर गंभीरतापूर्वक विचार किये बिना, वैकल्पिक संचार माध्यमों की शक्ति और उनके साधनों का आकलन किये बिना वर्तमान मीडिया के चरित्र में किसी परिवर्तन की अपेक्षा करना केवल अपनी शुभाकाँक्षा को दोहराना मात्र होगा कि मीडिया में आत्मनियंत्रण का सद्विवेक जागृत हो जाएगा अथवा आज के पाठक और दर्शक कोई नैतिक दबाव डालकर उसे ऐसा करने के लिए बाध्य कर देंगे। मीडिया व्यवस्था और बाजार की वकील बनकर कभी विश्वस्त और दीर्घजीवी नहीं रह सकती। निर्भीक समालोचना ही उसका मूल चरित्र है। यह सुखद संकेत है कि प्रकाशकों और सम्पादकों को भी धीरे-धीरे इसकी अनुभूति होने लगी है।

'मीडिया मीमांसा' के तीसरे वर्ष का यह तीसरा अंक है। अगले अंक से पत्रिका के नए संपादक होंगे। पिछले अंकों में आप सभी पाठकों, लेखकों और समीक्षकों ने जो प्रभूत सहयोग एवं मार्गदर्शन किया है उसके लिए मैं अत्यन्त आभार और कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। विश्वविद्यालय के रेक्टर श्री ओ.पी. दुबे, श्री विजयदत्त श्रीधर सहित सभी विभागाध्यक्षों एवं संपादकीय सहयोगियों का भी कृतज्ञ हूँ जिनके सामूहिक परिश्रम का श्रेय मुझे मिलता रहा है। मीडिया मीमांसा का पत्रकारों, शिक्षण संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों में भरपूर स्वागत हुआ है। मुझे विश्वास है भविष्य में इसके नए संपादक और संपादक मंडल के साथ आपका सहयोग और अधिक प्रगाढ़ होगा। नववर्ष की हार्दिक मंगल कामनाओं के साथ एक बार पुनः आभार और प्रणाम।

– अच्युतानंद मिश्र